इच्छारहित तप ही निर्वाण का कारण है

इच्छा-रहियउ तव करहि, अप्पा अप्पु मुणेहि।
तो लहु पावहि परम-गई, फुडु संसारु ण एहि॥१३॥

बिन इच्छा शुचि तप करे, जाने निज रूप आप।
सत्वर पावे परम पद, लहे न पुनि भवताप॥

अन्वयार्थ – (अप्पा) हे आत्मा! **(इच्छा रहियउ तव करहि)** यदि तू इच्छा रहित होकर तप करे **(अप्पु मुणेहि)** व आत्मा का अनुभव करे **(तउ लहु परमगइ पावइ)** तो तू शीघ्र ही परम गति को पावे **(पुण संसार ण एहि)** फिर निश्चय से कभी संसार में नहीं आवे।

वीर संवत २४९२, ज्येष्ठ कृष्ण ८, शनिवार, दिनाङ्क ११-०६-१९६६
गाथा १३ से १५ प्रवचन नं. ५

यह योगसार शास्त्र है। योगीन्द्रदेव एक मुनि हुए हैं, दिगम्बर सन्त! उन्होंने आत्मा के अन्तर-योग अर्थात् व्यापार, उसका सार वर्णन किया है। जिससे आत्मव्यापार से कल्याण और मुक्ति होती है। बारह गाथा हो गयी है, तेरहवी – **इच्छारहित तप ही निर्वाण का कारण है।** तेरहवीं गाथा।

इच्छा-रहियउ तव करहि, अप्पा अप्पु मुणेहि।
तो लहु पावहि परम-गई, फुडु संसारु ण एहि॥१३॥

अप्पा अर्थात् आत्मा.... इच्छारहित तप करके... कर्ता स्वयं आत्मा, आत्मा को जाने। क्या कहते हैं? आत्मा अपने शुद्ध आनन्द पवित्रस्वरूप को जानकर और शुभ व

अशुभ इच्छा जो राग, उसे रोककर और अपने शुद्धस्वरूप में तप अर्थात् लीनता करे, अपने शुद्ध पवित्रस्वरूप में तपना अर्थात् लीन होना, उसे यहाँ तप कहा जाता है। समझ में आया?

इच्छारहित.... इच्छा अर्थात् शुभाशुभरागरहित अर्थात् आत्मा शुद्ध पवित्रस्वरूप है। पुण्य-पाप के रागरहित ऐसे स्वभाव का ज्ञान करके और उस स्वभाव में पुण्य-पाप की इच्छा को रोककर स्वरूप में लीन हो, उसे यहाँ तप कहा जाता है। इस तप से आत्मा की मुक्ति होती है।

मुमुक्षु – खूब करते हैं।

उत्तर – कौन करते हैं?

मुमुक्षु – अपने पर्यूषण आवे तब करते हैं।

उत्तर – वह सब लंघन करते हैं। लंघन करते हैं लंघन। सेठ! इस पर्यूषण में सब क्या करते हैं?

इच्छा रहियउ तव करहि यह शब्द क्या है? आत्मा वस्तुस्वरूप से इच्छारहित है। आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप अनन्त आनन्द की मूर्ति आत्मा है। उसमें इच्छा ही नहीं; अतः उसमें इच्छा नहीं तो इच्छा जो है, उसकी ओर का आश्रय-लक्ष्य-रुचि छोड़कर और जिसमें इच्छा नहीं है, ऐसा आत्मा, अनन्त ज्ञान-दर्शन आनन्द (स्वरूप है), उसकी श्रद्धा ज्ञान और लीनता.... उसमें लीनता शुद्धस्वरूप में शुद्धोपयोगरूपी लीनता, शुद्धस्वभाव में शुद्ध आचरणरूपी तपना, उसे संवर और निर्जरा होते हैं। कहो, समझ में आया? अशुभभाव होवे तो पाप होता है; शुभभाव – दया, दान होवे तो पुण्य होता है, वह धर्म नहीं है। समझ में आया? **इच्छा रहियउ तव करहि** तप अर्थात् आत्मा की लीनता। दूसरी भाषा में कहें तो वीतरागता में लीनता और राग का अभाव। समझ में आया? इच्छारहित अर्थात् सरागता का अभाव और तप अर्थात् शुद्धता में लीनता; शुद्धता में लीनता और शुभाशुभ परिणाम का अभाव, उसे यहाँ मुक्ति का कारण तप कहा जाता है। अद्भुत व्याख्या, भाई! कहो समझ में आया?

आत्मा शुद्ध चिदानन्दस्वरूप आनन्दमूर्ति के भान बिना अकेले उपवासादि करे,

वह तो राग की मन्दता हो तो उसमें मिथ्यात्वसहित पुण्य बाँधता है। जन्म-मरण का अन्त और धर्म का स्वरूप उसे नहीं कहा जाता है। कहो, समझ में आया?

इच्छा रहियउ तव नास्ति से बात की, फिर तप से, अस्ति से कही। भगवान आत्मा – ऐसा कहा न? **अप्पा अप्प मुणेहि** अपना शुद्ध वीतरागी वास्तविक स्वरूप निर्दोष अकषाय उसका स्वभाव, उसे जाने अर्थात् जानकर उसमें लीन होवे, उसका नाम इच्छारहित तप कहा जाता है। आहा...हा...!

मुमुक्षु – आत्मा के जाने बिना तप होता ही नहीं।

उत्तर – परन्तु आत्मा अर्थात् क्या? आत्मा अर्थात् रागरहित आत्मा। रागरहित आत्मा, उसके स्वभाव के ज्ञान बिना, उसमें स्थिरता कैसे होगी?

मुमुक्षु – धर्म तो है न?

उत्तर – धर्म किसे कहते हैं? धर्म कहना किसे? आत्मा परमानन्द आनन्द का भान हो, उस आनन्द में स्थिर हो, उसका नाम धर्म है। आत्मा में आनन्द है। अतीन्द्रिय आनन्द, मैं अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप हूँ – ऐसा जिसे ज्ञान नहीं, वह उसमें स्थिर कैसे होगा? आकर्षित कैसे होगा? अतीन्द्रिय आनन्द अपने में न भासित हो, वह उसमें आकर्षित और स्थिर कैसे होगा? जिसे पुण्य-पाप के परिणाम में ठीक लगता हो, वह वहाँ से हटेगा कैसे? समझ में आया? कहो, इसमें समझ में आता है या नहीं? रतिभाई!

अस्ति-नास्ति की है, देखो! **इच्छा रहियउ** और **तव करहि** – ऐसा कहा है न। **तव करहि** अस्ति है और **इच्छा रहियउ** नास्ति है। अर्थात् क्या कहा? कि भगवान अस्ति स्वरूप से पहले कहा है, कि हे आत्मा! **अप्प मुणेहि** आत्मा ज्ञान, चैतन्य, दर्शन, आनन्द, निर्दोष पूर्ण अनन्त स्वभाव पिण्ड ऐसा भगवान, उसे जान। क्यों? कि वह इच्छारहित चीज है और इच्छारहित चीज है, उसमें इच्छा को टालकर, स्वरूप ऐसा शक्ति से वीतराग है, उसमें स्थिर हो, उसे अस्तिरूप तप कहा जाता है। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म बात पड़ती है, भाई! उपवास करना हो, अन्य करना हो तो एकदम पकड़ में भी आवे... लो!

मुमुक्षु – क्या पकड़ में आवे।

उत्तर – यह कुछ करते हैं – ऐसा इसे लगता है।

यहाँ तो सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा, जिन्हें एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल का ज्ञान था। वे परमेश्वर वीतराग तीर्थंकर ऐसा फरमाते हैं, भाई! यह आत्मा ज्ञानानन्द शुद्धस्वरूप पवित्र आनन्दस्वरूप है। उसमें स्थिर हो, लीन हो, उसे तप कहा जाता है। उसमें लीन हुआ तो इच्छा रुक गयी। इच्छा रुक गयी, स्वरूप में लीन हुआ, यह इसे मुक्ति का मार्ग कहा जाता है। कहो, समझ में आया? कहो, रतिभाई! क्या करना यह?

इच्छा रहियउ तव करहि 'करहि'। यह भगवान आत्मा....! बहुत संक्षिप्त शब्दों में अकेला सार ही भरा है। योगसार है न? योग अर्थात् स्वरूप में जुड़ान करके स्थिर होना। यह भगवान आत्मा पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द की सत्ता के स्वभाव से भरपूर प्रभु, इसकी लालच में दृष्टि गयी, इच्छाओं की – शुभाशुभ की वृत्तियों को रोककर.... रोककर कहना, यह भी एक नास्ति से बात है। परन्तु स्वरूप में 'इच्छारहित' शब्द कहा है न? स्वरूप शुद्ध चैतन्य ज्ञायक की सत्ता का भान, उसमें दृष्टि और स्थिरता करने से इच्छा रुक जाती है और स्वरूप में लीनता होती है, उसे यहाँ तप और धर्म कहा जाता है। समझ में आया? तप अर्थात् आहार नहीं खाना और अमुक दूध खाया और दही नहीं खाया, इसलिए तप हो गया – ऐसा नहीं है। यह सब लंघन है लंघन। यहाँ तो चारित्र की रमणता, वह तप है। समझ में आया?

अनादि से ऐसे राग में रमता है। पुण्य-पाप के राग के विकल्प में रमता है, वह संसार है। समझ में आया? उस पुण्य-पाप के राग से हटकर, जिसमें पुण्य-पाप नहीं है – ऐसा भगवान आत्मा का स्वभाव, उसमें स्थिरता को वास्तव में मुक्ति का उपाय और तप कहते हैं।

मुमुक्षु – आत्मा को जानने के बाद स्थिरता की बात है।

उत्तर – जाने बिना स्थिरता कैसे करेगा?

मुमुक्षु – जानने के लिये तप करना न।

उत्तर – तप क्या करे ? धूल... जानने के लिये तप करते होंगे ? कहो, तुम्हारा नाम जानना हो तो कितने उपवास करने से नाम जानने में आयेगा ? साथ में मनुष्य खड़ा हो, मुझे पूछना नहीं, जानना नहीं, कहो कितने तप से ज्ञात होगा ?

मुमुक्षु – दूसरे को विचार होता है कि यह कुछ माँगता है।

उत्तर – पूछना पड़े न इसे ? पूछना पड़े न, तुम कौन हो ? तुम्हारा नाम क्या है ? हैं ? धूप में खड़े रहो तो ?

मुमुक्षु – परन्तु लौकिक तप और यह लोकोत्तर अलग बात है न ?

उत्तर – लौकिक में दूसरा हो और लोकोत्तर में दूसरा हो – ऐसा होगा ? यह तो दृष्टान्त है। किसी भी व्यक्ति का नाम जानना हो, उसकी पहचान करना हो तो इस जेब में से पाँच लाख रुपये दे देवे तो नाम ज्ञात हो जायेगा ? कहो, रतनलालजी ! जेब में से दूसरे को दे दे तो ? इस दान से नहीं होता। दो-चार दिन मौन रह जाये, नाम ज्ञात हो जायेगा ? दो-चार दिन खाये नहीं, उसमें नाम ज्ञात हो जायेगा ? समझ में आया ? नाम जानने का तो जो अज्ञान है, उसे ज्ञान द्वारा ही अज्ञान नष्ट होता है। तुम्हारा नाम क्या है ? अभी पूछे न, आपका शुभ नाम क्या है ? ऐसा क्या कुछ कहते हैं न ? हैं ? आपका शुभ नाम। ऐसी सब भाषा है न ? क्या कहते हैं ? ऐसा कुछ कहते हैं न ? आपका शुभ नाम क्या है ? ऐसा पूछते हैं। तब कहता है, हमारा नाम अमुक है।

यहाँ कहते हैं, हे आत्मा ! तू कौन है ? ऐसा यहाँ कहते हैं। तेरा नाम अर्थात् तू किसमें रहता है ? तू किसमें रहा हुआ है ? तुझे किस प्रकार पहचानना ? **अप्पा अप्प मुणेहि** ऐसा शब्द है। आत्मा अपने आत्मा का ज्ञान करे कि यह आत्मा.... यह आत्मा.... जाननेवाला -देखनेवाला आनन्द शुद्धता वीतरागता – ऐसा जो आत्मा का स्वरूप, वह आत्मा। ऐसे ज्ञान और श्रद्धा – विश्वास करके, राग से हटकर स्वरूप में स्थिर हो, उसे यहाँ तप और धर्म कहा जाता है। आहा...हा... !

मुमुक्षु – कोई उपवास नहीं करे....

उत्तर – कौन उपवास करता था ? अपवास करता है, अपवास – माठोवास।

उपवास कहाँ है ? उप अर्थात् आत्मा में समीप में जाकर स्थिर होना, उसका नाम वास्तव में उपवास है। समझ में आया ?

तउ लहु पावइ परम गई भाषा ऐसी है, क्योंकि जिसमें मोक्षस्वरूप भगवान आत्मा है, उसमें लीन होने से, **लहु** अर्थात् शीघ्र-अल्प काल में **पावइ परम गई** वह परम गति को पाता है। परम गति अर्थात् पूर्णानन्द मोक्षदशा को पाता है। उसे फिर चार गतियाँ नहीं होती और परम गति पाने के बाद उसे फिर से अवतरित नहीं होना पड़ता। कहो, समझ में आया ? **'तउ लहु पावइ परम गई पुण संसार ण एहि'** दो, अस्ति-नास्ति की है। जिसने भगवान आत्मा ने शुद्धता के स्वभाव का विश्वास करके और विश्वास से उसमें रमकर और उसके द्वारा परमगति को प्राप्त किया, वह फिर से संसार प्राप्त नहीं करता। **पुण संसार ण एहि, फिर निश्चय से कभी संसार में नहीं आयेगा.....** ऐसा कहकर, जिसे परमगति प्राप्त हुई है, उसे फिर अवतार नहीं हो सकता। दुनिया के (लोग) कहते हैं न, भाई! भक्तों की पीड़ा मिटाने को अवतार धारण करना पड़ता है, क्या कहलाता है ? राक्षसों को मारने के लिये (अवतार ले) – ऐसा स्वरूप नहीं है, वह वस्तु को नहीं समझता है।

यहाँ अपने शुद्ध स्वरूप में स्थिरता करने से वापस नहीं फिरता और स्थिरता से पूर्ण मुक्ति होने पर वह वापस हटकर अवतरित हो, यह तीन काल में नहीं होता। कहो, समझ में आया ? अतीन्द्रिय आनन्द की पूर्णता में लीन हुआ, वह अतीन्द्रिय आनन्द में से वापस हटेगा ? हैं ? मक्खी जैसा (प्राणी) शक्कर की मिठास देखकर चिपटता है तो हटता नहीं। भले ही उसकी पंख चिपक जाये, शरीर में थोड़ा मर्दन (होये), शक्कर लेने से ऐसे हाथ में आ जावे परन्तु मिठास के कारण उसे छोड़ता नहीं है, वहाँ से उड़ता नहीं है; इसी प्रकार आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप का जिसे पहले विश्वास आया है, विश्वास क्यों (आया है) ? ज्ञेय अर्थात् उसका ज्ञान करके कि यह आत्मा आनन्द और शुद्ध है – ऐसा ज्ञान करके जिसे विश्वास आया और विश्वास आकर उसमें से आनन्द प्रगट होगा, उसमें स्थिर होता है, लीन होता है, तपता है, लीनता करता है, उसे अल्प काल में मोक्ष स्वभाव ऐसा अपना उस पर्याय में पूर्णदशा को, मुक्ति को प्राप्त करता है। **संसार ण एहि** संसार नहीं

पाता। अस्ति-नास्ति की है। पूर्णानन्द की दशा को प्राप्त करता है, वह संसार को प्राप्त नहीं करता। कहो, समझ में आया?

शीतलप्रसाद ने बीच में जरा ऐसा अर्थ किया है, हाँ! देखो, **अपने ही शुद्ध आत्मा के श्रद्धान और ज्ञान में तपना, लीन होना, वह निश्चय तप है।** ऐसा जरा किया है। थोड़ा सा ठीक करते हैं, यह फिर किया है, यह पता है, यह पता है। **निमित्त का संयोग मिलाने से उपादान की प्रगटता होती है।** यह सब ऐसा ही चलता है। अपने तो यह सुलटा-सुलटा ले लेना। समझ में आया? इन्हें निमित्त का मूल था सही न! **निमित्त का संयोग मिलाने से....** मिलाता होगा? यह तो ऐसा कहना है कि वह बारह प्रकार के तप का विकल्प आता है न? ऐसा आता है, इतना... समझ में आया? फिर तो उसकी व्याख्या लम्बी की है, उसका कुछ नहीं। कहो, यह १३ गाथा हुई। तेरहवीं हुई न।

☆ ★ ☆

परिणामों से ही बन्ध व मोक्ष होता है

परिणामे बंधु जि कहिउ, मोक्ख वि तह जि वियाणि।
इउ जाणेविणु जीव तुहुँ, तहभाव हु परियाणि॥१४॥

'बन्ध-मोक्ष' परिणाम से, कर जिन वचन प्रमाण।
अटल नियम यह जानके, सत्य भाव पहचान॥

अन्वयार्थ – (परिणामे बंधुजि कहिउ) परिणामों से ही कर्म का बन्ध कहा गया है **(तह जि मोक्ख वि वियाणि)** वैसे ही परिणामों से ही मोक्ष को जान **(जीव)** हे आत्मन्! **(इउ जाणेविणु)** ऐसा समझकर **(तुहुँ तह भावहु परियाणि)** तू उन भावों को पहचान कर।

☆ ★ ☆

परिणामों से ही बन्ध व मोक्ष होता है। देखो यह गाथा समझने जैसी है। अभी बड़ी गड़बड़ चलती है न?

परिणामे बंधु जि कहिउ, मोक्ख वि तह जि वियाणि।
इउ जाणेविणु जीव तुहुँ, तहभाव हु परियाणि॥१४॥

कहिउ भगवान ने कहा – फिर ऐसा सिद्ध करते हैं। भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने **परिणामों से ही कर्म का बंध कहा गया है।** क्या कहते हैं? तेरे परिणाम जो हैं, उन परिणामों से ही बन्धन होता है। कहो, समझ में आया? कोई जीव की हिंसा या दया (करे), उससे बन्धन नहीं होता – ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु – दूसरे शास्त्र में ऐसा लिखा है।

उत्तर – दूसरे शास्त्र में तो निमित्त की बात की होती है। क्या करे?

मुमुक्षु – दोनों कथन मानना पड़े न?

उत्तर – एक ही कथन यथार्थ है, उसे दूसरा कथन उपचार, वह जानने योग्य है। यह क्या कहा? परिणाम से बंध भगवान ने कहा है।

मुमुक्षु – एकान्त हो जाता है?

उत्तर – एकान्त परिणाम से बंध (होता है), यह सम्यक् एकान्त ही है। कहो, यह तो आया है न? इसमें लिया है, उसमें अपने नहीं.... ? उसमें भी कहीं डाला है। समयसार में आता है न? **अज्झवसिदेण बंधो सत्ते मारेउ मा व मारेउ। एसो बंधसमासो जीवाणं णिच्छयणयस्स॥ २६२॥** भगवान स्वयं समयसार में ऐसा कहते हैं कि किसी वस्तु के आश्रय से बन्ध नहीं होता। पर जीव मरे, उस वस्तु का आश्रय वह। जीव मरे, बचे, लक्ष्मी उसके आश्रय बंध नहीं होता। शरीर की क्रिया, शरीर की क्रिया, जीव का बाहर का मारना या जीना या लक्ष्मी का आना या लक्ष्मी का जाना, उस किसी परवस्तु के आश्रित बंध नहीं होता। समझ में आया?

मुमुक्षु – पर के कारण बंध नहीं होता।

उत्तर – बंध होता ही नहीं।

मुमुक्षु – एकान्त हो जाता है।

उत्तर - एकान्त ही है। परिणामे बंधो – यह क्या कहते हैं? जैसे तेरे परिणाम –

शुभ और अशुभ, 'परिणाम' शब्द से यहाँ (ऐसा अर्थ है कि) मिथ्यात्वभाव और शुभ -अशुभ परिणाम इन तेरे परिणामों से बंध है। कर्म के उदय से बंध है – ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु – गोम्मटसार का क्या करेंगे ?

उत्तर – गोम्मटसार का यह करना। कहो, समझ में आया ? तेरा भाव.... इस स्वरूप की सन्मुखता को छोड़कर, शुद्धस्वभाव की सन्मुखता को छोड़कर, परसन्मुखता के परिणाम वे तेरे परिणाम बंध का कारण एक ही है। क्या कहा इसमें, समझ में आया ?

दो बात – (१) आत्मा शुद्धस्वरूप है, उसकी सन्मुखता के परिणाम, वह मोक्ष का कारण..... उसकी सन्मुखता से तेरे विमुख परिणाम, कर्म के कारण वह जीव मरे (ऐसा नहीं) यहाँ तो परिणाम से बंध कहा उसमें कहाँ आया ? **वत्थुं पडुच्च** इनकार किया है। वस्तु से नहीं। वस्तु अर्थात् क्या ? मरना-जीना तो नहीं, ऐसा उसमें आया या नहीं ? भाई ! सामने जीव मरे, पैसा हो फिर भी, इस शरीर का निमित्त होकर कोई छह काय जीव मरे, उसके साथ बंध का कारण है ही नहीं। समझ में आया ? भले उस परिणाम में वह चीज निमित्त हो परन्तु वह बंध का कारण नहीं है। बन्धन का कारण तो तेरे स्व स्वभाव से विमुखपने में और परसन्मुखता से सन्मुखपने के परिणाम, पुण्य-पाप के, मिथ्यात्व के – वह एक ही परिणाम बंध का है। आहा...हा... ! कहो, समझ में आया ?

मुमुक्षु – दूसरी जगह दूसरा लिखा है।

उत्तर – दूसरा लिखा ही नहीं। अन्यत्र ऐसा कहें ? एक जगह – ऐसा कहे और एक जगह ऐसा कहे, मूर्ख है ? मूर्ख हो, वह ऐसा उल्टा अर्थ करता है। समझ में आया ?

परिणामें बंधुजि कहिउ 'कहिउ' (कहा है)। देखो ! परिणाम से कर्म का बंध है, भाई ! प्रभु आत्मा शुद्ध अखण्डानन्द से विमुख परसन्मुखता के परिणाम, वह एक ही परिणाम बंध का कारण है। समझ में आया ? **तह जि मोक्ख वि वियाणि उसी प्रकार परिणामों से ही मोक्ष जान।** ऐसा, देखो ! है न ? उसके साथ सम्बन्ध है न ? तथा मोक्ष **वि वियाणि** अर्थात् ? जैसे अपने अशुद्ध परिणाम... अशुद्ध मिथ्यात्व के पुण्य, शुभाशुभभाव के, अव्रत के, प्रमाद के, कषाय के ऐसे जो तेरे परिणाम परसन्मुख के भाव हैं, वही परसन्मुख को उत्पन्न करानेवाले बंध को उत्पन्न करानेवाले वे भाव हैं। समझ में आया ?

वीतराग कहते हैं – ऐसा तो आचार्य स्वयं पुकारते हैं। **तह जि** तथा हे आत्मा! तेरे परिणाम से मोक्ष ऐसा **वियाणि** ऐसा कहते हैं। तेरे परिणाम से तुझे मोक्ष है। परिणाम अर्थात्? मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र का नाश और सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र के परिणाम – इन परिणामों से तेरा मोक्ष है। ओ...हो...हो...! बहुत लिखा है इसमें तो! समझ में आया? तेरे जैसे भगवान प्रभु (की) स्वसन्मुखता को छोड़कर परसन्मुखता और अपनी विमुखता – ऐसे जो मिथ्यात्व अव्रत, कषाय आदि के शुभाशुभ परिणाम वे ही बंध का (कारण हैं)। परिणाम बंध का कारण हैं – ऐसा। भगवान तीर्थंकरों ने सौ इन्द्रों की उपस्थिति, गणधरों की हाजिरी में भगवान ऐसा कहते थे। कहो, समझ में आया?

उसी प्रकार परिणामों से ही मोक्ष जान। भाषा देखो! **तह जि मोक्ख वि वियाणि** यह तो उसमें आ जाता है। समझ में आया? **उसी प्रकार....** 'ही' है न? 'जि' **उसी प्रकार परिणामों से ही मोक्ष जान।** अद्भुत भाषा, भगवान आत्मा... यहाँ तो भगवान आत्मा अपने शुद्धस्वभाव की सन्मुखता के सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ऐसे निश्चय रत्नत्रय के परिणाम, वही मोक्ष का कारण है – ऐसा तू जान, ऐसा भगवान कहते हैं। कहो, समझ में आया इसमें? ऐ...ई...! आहा...हा...!

सन्मुख, सन्मुख और विमुख... एक बात है। एक बात है। भगवान आत्मा अपनी शुद्ध सम्पत्ति को छोड़कर, उसके माहात्म्य को छोड़कर और परवस्तु की अपने से अधिकपने कीमत करने जाता है, यह ठीक है और यह ठीक नहीं – ऐसे मिथ्यात्व के परिणाम और उसके साथ यह अनुकूल और प्रतिकूल – ऐसे जो इष्ट-अनिष्ट परिणाम, शुभाशुभ, बस! वह एक ही बन्ध का कारण है। बन्धन अर्थात् चार गति में भटकने का यह एक परिणाम कारण है। नये कर्म बँधते हैं, वह तेरे परिणाम से बँधते हैं; उस क्रिया से नहीं। परजीव मरे या परजीव बचे अथवा लक्ष्मी अधिक रहे या लक्ष्मी थोड़ी रहे या लक्ष्मी दान में देने की क्रिया हो या लक्ष्मी रखने की कंजूसी की क्रिया हो तो वह लक्ष्मी और जीना मरना, वह बंध का कारण नहीं है। मोहनभाई! तेरे उसकी ओर की रुचिपूर्वक के आसक्ति के परिणाम होते हैं, वह एक ही बंध का कारण है। यह एक कारण सिद्ध करना है,

फिर दूसरा कारण नहीं। स्वयं परिणाम बंध का कारण और कर्म भी बंध का कारण (ऐसा नहीं है)।

मुमुक्षु – कारण-कार्य मीमांसा में कहा है, वह निर्णित होना चाहिए न?

उत्तर – सब आ गया। यह कारण है, वहाँ दूसरा भले निमित्त कहने में आवे, यह तो फूलचन्दजी ने बहुत कहा है। पीछे से कहा। फिर काया को निमित्त कहने में आता है – ऐसा थोड़ा कहा। क्या करे परन्तु? कहीं बचाव करके फिर दूसरी ओर आ जाए उन्होंने यह डाला है। काया से धर्म नहीं होता और काया से बंध नहीं होता। उसमें डाला है। निमित्त कहलाता है, ऐसा कहा है न? परन्तु उसका अर्थ क्या? कहो, रतिभाई! यह सब विवाद चारों ओर है। हैं? आहा...हा...!

श्रोता – चारों ओर झगड़ा वर्तमान में वर्तता है।

कहते हैं, भगवान आत्मा अपने शुद्ध आनन्द स्वभाव को भूलकर कहीं भी पुण्य-पाप के भाव में और पर में सुख है – ऐसी मान्यता के परिणाम, उसे संसार के बंध का कारण है और उसी परिणाम से गुलाँट खाने से भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप प्रभु है, उसकी सन्मुखता के श्रद्धा-ज्ञान और विश्वास के परिणाम और स्थिरता के परिणाम, बस! वह परिणाम ही मोक्ष का कारण है। कहो, देह की क्रिया मोक्ष का कारण नहीं है – ऐसा कहते हैं। वे कहते हैं, देह की क्रिया मोक्ष का (कारण है)।

मुमुक्षु – सिद्ध किया है कि देह से मोक्ष होता है।

उत्तर – धूल में भी नहीं होता... व्यर्थ का... ऐसा का ऐसा.... व्यवहार का कथन किया, वहाँ चिपट पड़ा। आहा...हा...! गले पड़ा गले।

मुमुक्षु – शरीर से मोक्ष होता है।

उत्तर – शरीर से मोक्ष होता है और शरीर से बंध होता है... भगवान को देखो, उदय भाव है, वह क्षायिक का कारण होता है। अरे...! सुन न... यह तो कहते हैं कि निर्जरा हो गयी, इस अपेक्षा से उसे क्षायिक कहा है।

यहाँ तो कहते हैं कि मोक्ष भी आत्मा के शुद्धपरिणाम से होता है; देह की क्रिया के

निमित्त से नहीं। देह की क्रिया के निमित्त से मोक्ष नहीं होता। आहा...हा...! स्वभाव की महिमा के, विश्वास के, स्वभाव की महिमा का ज्ञान, स्वभाव की महिमा का विश्वास और स्वभाव की महिमा में ही लीन... हैं? वह स्व अभिमुख के परिणाम-भगवान की सन्मुखता के परिणाम, वह भगवान आत्मा तो मुक्ति का कारण है। कहो, समझ में आया? अब, यह पैसा-वैसा कोई पाँच-पचास लाख मिले और उसमें से दो-पाँच लाख खर्च करे तो उसमें से कोई मुक्ति होती है या नहीं? है? यहाँ तो कहते हैं कि यह देता हूँ – ऐसा राग का मन्द विकल्प है न, वह बंध का कारण है क्योंकि पर सन्मुखता का परिणाम है। हैं? कहो, हरिभाई!

मुमुक्षु – ..... भाव होता है.....

उत्तर – भाव, परन्तु उसे माने क्या? कि यह बंध भाव है। बंध भाव है – ऐसा जाना तो हो गया। यह बंध भाव है। मेरी मुक्ति के होने में यह परिणाम नहीं। मोक्ष होने के, छूटने के यह परिणाम नहीं। यह बँधने के परिणाम हैं। अबन्धस्वरूपी भगवान को बँधने के परिणाम हैं। अबंधस्वरूपी भगवान आत्मा की स्वसन्मुखता के अबंध परिणाम ही मुक्ति का कारण हैं। आहा...हा...! अरे...! यह तो बहुत संक्षिप्त में योगसार है न? ऐसा स्वरूप की सन्मुखता का व्यापार, वह परिणाम मुक्ति का कारण और स्वरूप से विमुख पर की दया, दान, व्रतादि के समस्त परिणाम, वह सब बंध का कारण है। समझ में आया? फिर सम्यग्दृष्टि हो या मिथ्यादृष्टि हो; सबको जो परिणाम बंध के हुए, अशुद्ध, वे बंध का ही कारण है।

श्रोता – परसन्मुख होवे उसे।

उत्तर – सम्यग्दृष्टि को भी जितने व्रतादि के परिणाम आते हैं, वे सब परसन्मुखता के परिणाम हैं, इतना उसे बंध का कारण है। जितने स्वसन्मुख के शुद्ध परिणाम – श्रद्धा, ज्ञान और विश्वास, स्थिरता, बस! यही परिणाम पूर्ण निर्मल, परिणामरूपी मुक्ति, पूर्ण निर्मल परिणामरूपी मुक्ति.... मुक्ति अर्थात् परिणाम शुद्ध है, पूर्ण परिणाम। समझ में आया? वे शुद्ध परिणाम उस शुद्ध मुक्ति के परिणाम का कारण है। अशुद्ध परिणाम, नवीन कर्म बन्धन में निमित्त है, परिभ्रमण का कारण है। सम्यक्त्वी को भी जितने अशुद्ध परिणाम हैं, वह संसार का कारण है।

मुमुक्षु – समकिती को तो परपदार्थ से लाभ है।

उत्तर – धूल में भी लाभ नहीं होता। लाभ किसे होता है?

मुमुक्षु – चारित्र अपेक्षा से, श्रद्धा अपेक्षा से तो लाभ हुआ।

उत्तर – चारित्र, चारित्र स्वरूप में रमणता, वह चारित्र है। पर से लाभ होता है? समझ में आया?

इउ जाणेविणु जीव देखो! **वियाणि** कहा न? **मोक्ख वि तह जि** जान। भगवान आत्मा के पूर्णानन्द के शुद्ध मुक्ति के परिणाम, वह शुद्ध है। उस परिणाम से ही मुक्ति है – ऐसा तू जान। किसी निमित्त से और क्रियाकाण्ड से मुक्ति नहीं है। व्रतादि के परिणाम बंध का कारण है; मुक्ति का कारण नहीं – ऐसा जान। जान ऐसा नहीं परन्तु वि-जान। समझ में आया?

इउ जाणेविणु जीव उसे जानकर **हे आत्मन्! ऐसा समझकर तू उन भावों को पहचान....** दोनों भाव की, हाँ! दोनों भाव की (पहचान कर)। परसन्मुखता के परिणाम का ज्ञान कर और स्वसन्मुख के परिणाम का ज्ञान कर।

मुमुक्षु – वे परिणाम पहचाने जाते होंगे।

उत्तर – यह क्या कहते हैं? जानने का यह क्या कहा?

मुमुक्षु – इस काल में ज्ञात नहीं होते।

उत्तर – ले, इस काल में ज्ञात नहीं होते तो यह बात किससे करते हैं? आत्मा भगवान पूर्णानन्द का नाथ, उसके सन्मुख के परिणाम को जान और उससे विमुख जितने परिणाम होते हैं, उन्हें जान – ऐसा सम्यग्दृष्टि को कहते हैं। समझ में आया?

ज्ञान तो दोनों का करना है कि यह जितने परिणाम शुद्धस्वभाव की सन्मुख के, इच्छारहित के, शुद्धोपयोग के, शुद्ध सम्यग्दर्शन के, ज्ञान के, शान्ति के, वे ही परिणाम अकेले मुक्ति का अथवा संवर, निर्जरारूप है और मुक्ति का कारण है। संवर, निर्जरा, वह परिणाम है। जितने परसन्मुख के परिणाम (होते हैं), वह आस्रव और बंधरूप है, वह आत्मा को हितकर नहीं है – ऐसा विजाण... ऐसा ज्ञान कर। समझ में आया?

कितनी गाथा चलती है यह ? चौदहवीं, आहा...हा... ! चौदहवाँ, चौदहवाँ... चौदहवीं गाथा चलती है, हाँ!

तुहुं तह तू – उन भावहु परियाणि उस भाव की तू पहचान कर कहते हैं। समझ में आया ? देखो ! पहचान कर – ऐसा कहते हैं। जिस परिणाम से आत्मा के स्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति (होती है), उसे जान और जो परसन्मुख के परिणाम होते हैं, उसे जान। दोनों को जानने का कहा है। जान सकता होगा, तब कहा है या जाने बिना ? समझ में आया ? सम्यक्त्वी को भी जितने परिणाम हिंसा के, विषय के, काम-क्रोध के परिणाम आते हैं, अरे... ! दया, दान, भक्ति भी आती है, उसे तू बंध का कारण जान – ऐसा कहते हैं। उसे तू बंध का कारण जान – ऐसा जान।

मुमुक्षु – आज्ञा करते हैं।

उत्तर – हाँ, विजाण। पहचान कर, पहचान। **तह भावहु परियाणि परियाणि** शब्द है फिर, देखो ! आहा...हा... ! समझ में आया ? अरे... ! ज्ञान क्या नहीं जाने ? चैतन्य ज्योत तीन काल-तीन लोक को जानने की ताकतवाला तत्त्व, वह साधक स्वभाव और बाधक के परिणाम को क्यों नहीं जानेगा ? समझ में आया ?

भगवान आत्मा के ज्ञान की एक समय की दशा, जिसे तीन काल तीन-लोक एक समय की पर्याय में समा गये हैं, उसे जानने से तीन काल-तीन लोक ज्ञात हो जाते हैं। ऐसी ज्ञान की दशा, उस साधकपने में स्वसन्मुख के परिणाम और परसन्मुख के परिणाम, उन्हें भलीभाँति जान सकती है। कहो, इसमें समझ में आया ? फिर समकिती हो या मिथ्यात्वी हो। शुभपरिणाम से समकिती को भी बंध है और आत्मा के शुद्धस्वभावसन्मुख के शुद्धभाव से समकिती को संवर और निर्जरा है। इस प्रकार तू जान। दूसरा है नहीं।

यह तो भाई ! जिसे जन्म-मरण से.... हैं ! जन्म-मरण से रहित होना हो, (उसके लिये बात है)। यह चार गति में धक्का खाना हो तो.... यह तो अनन्त काल से खाता है। मर गया, उसमें क्या है धूल में ? समझ में आया ? एक भव में से दूसरे भव में, दूसरे भव में से, तीसरे भव में.... देखो, भटका भटक करता है या नहीं ? हैं ! आत्मा तो अनादि का है। यह शरीर इस आत्मा के साथ कहीं अनादि का है ? यह शरीर दूसरा था, इसके पहले

दूसरा था, उसके पहले तीसरा था, उसके पहले चौथा.... ऐसे अनन्त काल के अनन्त शरीर आये और गये, आये और गये... धूल... हैरान-हैरान हो गया। ऐ...ई... आशीष! यदि दो घण्टे ऐसे मौन रह गया और कुछ बोले नहीं और यदि पड़खा नहीं फिरे तो हाय.... हाय! (करने लगता है)। समझ में आया? अरे...रे...! कोई पड़खा फिरता नहीं अरे! मुझे कहीं हर्ष (सुख) नहीं, हाँ! अकुलाहट... अकुलाहट.... (होती है)। अरे...! परन्तु किसकी अकुलाहट तुझे? अकुलाहट तो तेरे राग की अकुलाहट है, पड़खा नहीं फिरने की नहीं, ऐ... मोहनभाई! क्या होगा? पड़खा फिरता नहीं, (दर्द का) वेग आता है, ऐसा करें तो ऐसा है। क्या है परन्तु वह तो जड़ है। जड़ को कुछ व्यवस्थित कर दे न? बड़ा बड़कमदार (होशियार) है न?

मुमुक्षु – बड़कमदार अर्थात?

उत्तर – होशियार। ऐसा कहे हम किसी का कर देते हैं। कर न, तेरी कमर का। ऐ... यहाँ से ऐसा हुआ, क्या हुआ? क्या होता है? – पता नहीं पड़ता – ऐसा कहता है। ऐसा करने जायें तो ऐसा हो तो ऐसा करने जायें तो ऐसा हो... करे कौन? उस जड़ की अवस्था के सन्मुख के अभिमान के परिणाम, वह बंध का कारण है। आहा...हा...! समझ में आया? तुझे पता नहीं है।

भगवान आत्मा चिदानन्द की मूर्ति प्रभु है। उसके सन्मुख के परिणाम ही तुझे एक हितकर और कल्याण का कारण है। उसके अतिरिक्त कोई हितकर, कल्याण का कारण नहीं है। फिर हमारे धन्धा कब करना यह? कब कर सकता है? हैं? चिमनभाई! यह क्या कहा? यह सब क्या कहा? होशियार मनुष्य हो तो पाँच हजार-दस हजार (कमा) ले, लो! है? हमारे छोटाभाई है न? कहाँ गये? भावनगर गये? वे छोटाभाई कहते थे। अपने को कहाँ पता, अपने को कुछ पता नहीं पड़ता, छोटाभाई कहते हैं ये दोनों लोग पाँच हजार, आठ हजार निभाये, लो दूसरे को बीस हजार होता है और इन्हें बारह हजार, दोनों फिर होशियार बहुत! ऐसा हुआ होगा या नहीं? धूल में भी नहीं हुआ.... वह तो होना था, वह हुआ। चिमनभाई! क्या कहते हैं? लो! तुम्हारा यह मकान अभी बीस हजार की कीमत का गिना जाता है। पूछा तब शान्तिभाई कहते हैं, बारह हजार। लो! शान्तिभाई कहते हैं, बारह

हजार। मालिक कहता है, बारह हजार और अन्य कहते हैं बीस हजार! यह तो बाहर के धूल के ठाठ हैं। इसे जरा लगे, दिमाग हो, खड़े हों ऐसे ध्यान रखे। मुँह-बुँह उस समय चिमनभाई को काला हो जाता था। आहा...हा...! यहाँ दोपहर में व्याख्यान में आते। अभी मुँह है, ऐसा मुँह तब नहीं था। मुँह जरा ऐसा हो जाता, काला और लाल, चढ़ता खून और खड़ा रहना, वहाँ कहाँ छतरी रखकर खड़ा रहे? परन्तु वह कश का परिणाम हुआ, इसलिए यह काम हुआ ऐसा नहीं है। हाय...! हाँ! कठिन बात, भाई! समझ में आया? आहा...हा...! अद्भुत श्लोक है, बहुत संक्षिप्त... संक्षिप्त... संक्षिप्त... है। समझ में आया?

कहते हैं... बीच में तो इन्होंने बहुत डाला है, हाँ! यह मुनिव्रत, श्रावक के व्रत का राग, यह तप का राग, भक्ति का राग, पठन-पाठन का राग और मन्त्रों के जप का राग यह सब राग बंध का कारण है। इस ओर है, सत्तर पृष्ठ पर। समझ में आया? ऐसा यह थोड़ा ठीक लिखते हैं। यह.... अभी से नहीं करते? सब कह दिया।

मोक्ष के कारणरूप भाव एक वीतरागभाव है, शुद्धोपयोग है। निश्चयरत्नत्रय एक ही मोक्ष का कारण है। भगवान आत्मा अन्तर के शुद्धस्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता, निर्विकल्पता, वीतरागता, शुद्धता के परिणाम अपने शुद्धस्वरूप को अवलम्बन कर हुए, वह एक ही संवर और निर्जरारूप है, और वह स्वयं एक ही मुक्ति का उपाय है। समझ में आया? फिर अन्त में (लिया है) यह रत्नत्रयधर्म एकदेश हो तो भी बंध का कारण नहीं है। वह कहता है न? रत्नत्रय से बंध भी होता है और मुक्ति भी होती है, उसे अनेकान्त करना है। ऐसे का ऐसा, कौन जाने जगे हैं? है?

वह विद्रोही था न? 'जोगाखुमाण' क्या कहलाता है वह? 'जोगीदास खुमाण' दरबार का विद्रोही था न? भावनगर का... फिर भावनगर में कोई मर गया। तख्तसिंहजी (की) उपस्थिति थी। वह स्वयं मातम में शोक मनाने आया, हाँ! राजा का पक्का विद्रोही, ऐसे सिर पर थोड़ा कपड़ा रखे न?.... तो आना चाहिए न? वह तो राजा है, राजा ऐसे बैठे थे, वे बोले, ऐ... यह जोगीदास... दूसरे कहें पकड़ो। तख्तसिंह कहे अरे! अपना मेहमान है। अभी दूसरा होगा? अभी तो अपना मेहमान है, विद्रोही, हाँ! राजा का पक्का विद्रोही परन्तु यहाँ अभी क्यों आया है? आया है ऐसा नहीं बोले, हाँ! दरबार स्वयं, अभी क्यों आये

हैं जोगी खुमाण! आप हमारे तो मेहमान हैं। कोई भी व्यक्ति पुलिस को साथ लेकर (नहीं जाये) यहाँ से वह बाहर तक कुछ न करे उसके साथ रहो – ऐसा कि कोई विरोध न करे। उसे जिमाया, मेहमानगिरी करे, कोई बीच में विरोध न करे। समझ में आया? विद्रोही (सही).... परन्तु किस काम से आये हैं? हैं? मातम में आये हैं, उन्हें नहीं होता, इतना विवेक उसे है।

यहाँ कहते हैं कि आत्मा के स्वभाव का भान और जितना विरोधभाव उत्पन्न होता है, उसे स्वयं भलीभाँति जाने। बंध का कारण तू है, आदर नहीं दे। समझ में आया?

मुमुक्षु – शुभभाव विद्रोही है?

उत्तर – विद्रोही है। ऐसा ही योग है न यह तो? योग आया न? योगा खुमाण, अभी नहीं आये थे? तुम्हारे इसमें कोई आये थे, इस गाँव के, हाँ! आये थे न वे कहते थे। मेहमान आये थे। इसी प्रकार इस आत्मा के पुण्य-पाप के भाव विद्रोही हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु – लोग पुण्य करते हैं, पाप छोड़कर।

उत्तर – कौन करता और कौन छोड़ता है? व्यर्थ का मूढ़ है। यह शरीर छूटेगा तो फू..... होकर चला जायेगा। कोई तेरा शरणभूत नहीं है। जायेगा ऐसा का ऐसा। ये सब रजकण ऐ...ऐ... वह (जायेंगे)। समझ में आया?

कहते हैं, एकदेश भी आत्मा की शुद्धता के रत्नत्रय का अंश प्रगटे, निर्मल आत्मा के आश्रय से.... वह बंध नहीं है। वह बंध का कारण है ही नहीं। बहुत लिया है, नीचे भी बहुत अच्छा लिया है। जब साधु ध्यानस्थ हों, तब निवृत्ति मार्ग में चढ़ जाते हैं। ठेठ... ठेठ... सब लिया है, बहुत लिया है। अपने ऊपर से बात आ गयी। कहो, यह चौदह हुई। (अब) १५ (गाथा)

☆ ★ ☆

पुण्यकर्म मोक्षसुख नहीं दे सकता

अह पुणु अप्पा णवि मुणहि, पुण्णु जि करहि असेस।
तो वि ण पावहि सिद्ध-सुहु, पुणु संसारु भमेस॥१५॥

निज रूप के जो अज्ञ जन, करे पुण्य बस पुण्य।
तदपि भ्रमत संसार में, शिव सुख से हो शून्य॥

अन्वयार्थ – **(अह पुणु अप्पा णवि मुणहि)** यदि तू आत्मा को नहीं जानेगा **(असेसु पुण्णु वि करइ)** सर्व पुण्य कर्म को ही करता रहेगा **(तउ वि सिद्धसुहु ण पावहि)** तो भी तू सिद्ध के सुख को नहीं पावेगा **(पुणु संसारु भमेस)** पुनः पुनः संसार में ही भ्रमण करेगा।

☆ ★ ☆

पुण्यकर्म मोक्षसुख नहीं दे सकता।

अह पुणु अप्पा णवि मुणहि, पुण्णु जि करहि असेस।
तो वि ण पावहि सिद्ध-सुहु, पुणु संसारु भमेस॥१५॥

अह पुणु अप्पा ण वि मुणहि जो कोई आत्मा अपना शुद्ध आनन्दस्वरूप का ज्ञान और विश्वास नहीं करता और इसके अतिरिक्त **सर्व पुण्य....** भाषा देखो। **असेसु पुण्णु** अशेष पुण्य अर्थात् कि समस्त प्रकार के तेरे दया के, दान के, भक्ति के, व्रत के, साधु के आचरण के और पंच महाव्रत के, बारह व्रत के जितने आचरण तू कहता है, वे सब। **असेसु पुण्णु वि करइ** जितने शुभभाव के आचरण उत्कृष्ट में उत्कृष्ट कहलाते हैं ऐसे सब दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, पूजा, श्रावक, साधु के आचरण... समझ में आया? परन्तु वे साधक-फादक है नहीं। हैं?

मुमुक्षु – बाहर में दिखता है न?

उत्तर – बाहर में क्या दिखता है? लोग तो मूर्ख हों तो कहते हैं। कहो, समझ में आया? देखो न! क्या शब्द है? देखो!

अह पुणु अप्पा ण वि मुणहि पुण्णु वि करइ असेसु। देखो!! **असेसु** है न? अर्थात्? **असेसु** अर्थात् क्या कहते हैं? पंच महाव्रत के परिणाम, अट्ठाईस मूलगुण के परिणाम, आजीवन ब्रह्मचर्य, शरीर से ब्रह्मचर्य रखने के परिणाम, आजीवन एक लंगोटी भी नहीं रखने के परिणाम ऐसे यहाँ **असेसु** है न? बाह्य चीज का इतना अधिक त्याग कि

अन्तिम में अन्तिम नौंवे ग्रैवेयक गया। तेसे **असेसु** शुभ परिणाम जिसे हुए परन्तु वे सब बंध के कारण हैं। इस आत्मा के भान बिना वह अकेला पुण्य मुक्ति का कारण नहीं है। आत्मा के भानरहित होवे तो उसे वह निमित्त कहा जाता है। निमित्त कहा जाता है अर्थात् वह कारण है नहीं। आहा...हा...! समझ में आया?

आत्मा अपने निज स्वरूप को.... अहो! शुद्ध स्वरूप का भण्डार भगवान... अरे...! उसका इसे पता नहीं होता। अन्तर्मुख में, अन्तर्मुख में गहरा भगवान पूर्णानन्द लेकर पड़ा है, उसका जिसे विश्वास, उसका ज्ञान, उसे ज्ञेय बनाया नहीं, वह जीव अशेष कर्म – चाहे जिस प्रकार के पंच महाव्रत के, अट्ठाईस मूलगुण के, बारह-बारह महीने के अपवास (करे), छह-छह महीने के अपवास (करे) और भिक्षा के लिये जाये तो एक मुरमुरा और पानी.... ममरा कहते हैं? क्या कहते हैं? मुरमुरा। हाँ, वह धानी, चावल की धानी, हमारे यहाँ उसे ममरा कहते हैं और धानी कहते हैं। ज्वार को। ज्वार की बनाते हैं न? ज्वार, हाँ वह चावल की धानी... वह मुरमुरा और पानी ले... भगवान आत्मा ज्ञातादृष्टा एक राग की क्रिया का कर्ता नहीं – ऐसा जिसे चैतन्य का अन्तरज्ञान, विश्वास, स्थिरता नहीं है, वह ऐसे अशेष पुण्यकर्म करे **तउ वि णु पावइ सिद्धसुहु** तो भी वह मुक्ति के सुख को प्राप्त नहीं करता। अर्थात् उसे संवर निर्जरा नहीं होती – ऐसा कहते हैं।

वह संवर निर्जरा कब है? वह तो निमित्त है। निमित्त कब कहलाता है? शुद्ध उपादान अपनी शुद्ध स्वभाव की पूर्णानन्द की श्रद्धा-ज्ञान और स्थिरता के स्वभाव शुद्ध उपादान से प्रगट किया तो इन व्रतादि के परिणाम बन्ध का कारण है, उसे निमित्तरूप कहा जाता है। है बंध का कारण। समझ में आया? निमित्त देखकर बात की है, उसे लगा है मूर्ख। आहा...हा...!

अह पुण अप्पा ण वि मुणहि जिसने भगवान आत्मा चैतन्यरत्न कन्द प्रभु की जिसने कीमत नहीं की... अरे! जिसने आत्मा के स्वभाव की वर्तमान कीमत नहीं की, वे जीव पुण्य के परिणाम की कीमत करके दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, जप के भाव करके, उनकी कीमत करके उनसे हमारा कल्याण होगा... कहते हैं कि **पुणु पुणु भमेइ, पुणु संसार भमेसु** चार गति में भटकेगा और जन्म-मरण के अन्त का कोई भी लाभ नहीं होगा,

कहो, समझ में आया इसमें? कहो, मनसुखभाई! क्या तुम्हारे वहाँ चले, है या नहीं हिन्दुस्तान के साथ? हिन्दुस्तानी वे कुछ कहें, यह फिर कुछ कहे, दोनों अन्दर में चलते हैं। एक मन्दिर में दो। समझ में आया? क्या (कहा)? है या नहीं इसमें?

अह पुणु अप्पा ण वि मुणहि भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप राग से, देह से भिन्न है; जिसका माहात्म्य ज्ञान में पूर्ण नहीं हो सकता – ऐसा जो परमात्मा का निज स्वभाव, उसे जो नहीं जानता, वह **पुण्णु वि करई असेसु।** भले वह शुभभाव असेस – समस्त प्रकार के, हाँ! बारह-बारह महीने के उपवास करे, घी न खाये, दूध न पीये, परस्त्री का त्याग, स्वस्त्री का त्याग, रात्रि भोजन त्याग, ब्रह्मचर्य पालन करे, आजीवन रात्रि भोजन का त्याग, चौ विहार अर्थात्? चार प्रकार के आहार का त्याग। समझ में आया? रात्रि में नहीं खाये, ये सब क्रियाएँ असेस पुण्यरूप है; इनसे जरा भी धर्म नहीं है। आहा...हा...! कहो, समझ में आया इसमें? लोगों को कठिन पड़ता है, हाँ! अरे... बापू! अनन्त काल से जन्म-मरण के धक्के खाये हैं, भाई!

कहते हैं ऐसा **तो भी....** ऐसा। इतना करने पर भी – ऐसा है न? **तो भी तू.....** ऐसा.... **सिद्ध का सुख प्राप्त नहीं कर सकेगा।** भगवान आत्मा में आनन्द है, अतीन्द्रिय आनन्द का विश्वास तुझे नहीं और ऐसा पुण्य करके उसका विश्वास करता है कि इसमें से मुक्ति होगी तो **भमेइ** चार गति में परिभ्रमण करेगा परन्तु सुख नहीं मिलेगा अर्थात् आत्मा के आनन्द की प्राप्ति नहीं होगी। **तउ वि सिद्धि सुहु ण पावइ, तो भी सिद्ध का सुख प्राप्त नहीं कर सकेगा।**

पुणु संसार भमेसु, पुनः-पुनः संसार में ही भ्रमण करेगा.... लो! समझ में आया? आहा...हा...! यह साधक और साध्य, पंचास्तिकाय में आता है न? व्यवहार साधक... परन्तु कहा है न? कहा, किस नय से? नय का यहाँ क्या काम है? नय का क्या काम है? अरे... भगवान! बापू! भाई! ऐसा कि इस व्यवहार को साधक कहा है न? निश्चय साध्य और व्यवहार साधक। भले तुम उसे व्यवहार कहो, चलो... परन्तु व्यवहार को साधक कहा है न? किस नय से? नय का क्या काम? कहा है या नहीं? ऐ...ई...! उन्होंने सब उल्टा किया है लिखकर। टीका प्रमाण कथन व्यवस्थित किया, फिर नीचे

बचाव किया – ऐसा कहते हैं। तुम्हारे विवाद के लिये उसका स्पष्टीकरण किया, हैं। आहा...हा... ! भगवान का वचन, शास्त्र का वचन है या नहीं ? परन्तु वचन है, बापू ! वह किस नय से कहा है ?

यहाँ क्या कहते हैं ? देखो न ! कि आत्मा के शुद्धस्वरूप के सम्यग्दर्शन-ज्ञान -चारित्र के प्रगटपने के बिना जो कुछ तेरे दान, दया, व्रत, भक्ति, पूजा लाख हो.... अन्त में अन्त जो क्रिया कहलाती है – ऐसा असेस कहा है न ? अन्त में अन्त तेरे परिणाम – शुभ उपयोग जो हो, वह करे तो भी वह आत्मा को संवर-निर्जरा का कारण नहीं है; वह बंध का ही कारण है। पंचम काल में भी यह और चौथे काल में भी यह। यह सब काल भेद से अन्तर है, ऐसा भी नहीं है। वह भाव तो बंध का ही कारण है।

तब भी तू सिद्ध का सुख प्राप्त नहीं कर सकेगा। पुणु संसार भमेसु, पुनः -पुनः..... पुणु का अर्थ किया बारम्बार। **पुनः संसार में ही भ्रमण करेगा....** लो, समझ में आया ? देखो ! नीचे लिखा है। नीचे, (दूसरे पैराग्राफ की) तीसरी लाईन में। लाईन है **– वह बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि है। वह द्रव्यलिंगी साधु का चारित्र पालता है, शास्त्रोक्त व्रत समिति गुप्ति पालता है, तप करता है, आत्मज्ञानरहित तप से वह महान पुण्य बाँध कर नौवें ग्रैवेयक में जाकर अहमिन्द्र हो जाता है। आत्मज्ञान बिना वहाँ से चयकर संसार-भ्रमण में ही रुलता है।**

आत्मा शुद्ध चिदानन्द का अन्तर आनन्द का विश्वास आये बिना इस विश्वास में चढ़ गया, पुण्य के विश्वास में (चढ़ गया कि) इसके कारण (मुक्ति होगी)। तेरा विश्वास वहाँ गया। वह तो मिथ्या विश्वास है। समझ में आया ? मिथ्या विश्वास में चढ़ गया, मिथ्या मार्ग में चढ़ गया। आहा...हा... !

शुद्धोपयोग ही वास्तव में मोक्ष का कारण है। इन्होंने तो जरा कठोर किया है, हाँ ! **इसके अतिरिक्त मन, वचन, काया की प्रवृत्ति को अपना धर्म न समझकर बंध का करनेवाला अधर्म समझना है।** ७५ पृष्ठ पर है। अधर्म (पढ़ कर) अन्य शोर मचाते हैं। **व्यवहार में शुभ क्रिया को धर्म कहते हैं परन्तु निश्चय से जो बंध करता है वह धर्म नहीं हो सकता।** आहा...हा... ! वस्तुतः तो इन्होंने वहाँ तक लिया है, जरा यह तो

उनके शब्द हैं, हाँ! कि सम्यग्दृष्टि का लाभ होता है, जब आत्मा को आत्मा का भान और सम्यग्दर्शन होता है, **वह सर्व शुभ प्रवृत्तियों से अशुभ प्रवृत्तियों की तरह ही उदास होता है, वह न मुनि के व्रत पालना चाहता है न श्रावक के।** वह विकल्प है न? पालना चाहता है वह।

परन्तु आत्मबल की कमी से जब उपयोग अपने आत्मा में अधिक काल स्थिर नहीं रहता तब अशुभ से बचने के लिये वह शुभ कार्य करता है.... आता है; करता है – ऐसा कहा जाता है। देखो, पहले इन्होंने इनकार किया, हाँ! **वह न मुनि के व्रत पालना चाहता है न श्रावक के।** (वह विकल्प) तो राग है। ऐसा कितना ही ठीक लिखा है, फिर वापस निमित्त आवे तब जरा गुलांट खा जाते हैं। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, असेस पुण्य के जितने भाव हों, उतने किये जायें, तथापि उससे भिन्न आत्मा भगवान का भान न करे तो उसका परिभ्रमण नहीं मिटता। चार गति में भटकना होता है परन्तु उसका अवतार कभी नहीं घटता। लो! पूरा हो गया।

(श्रोता – प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीतरागता के बिना मात्र बाह्य नग्नता ही मुनिपना नहीं

आत्मा की दशा में सम्यग्दर्शन-ज्ञानपूर्वक वीतरागभाव प्रगट हुए बिना, मात्र बाह्य निर्ग्रन्थता या पञ्च महाव्रत में मुनिदशा नहीं है। उसी प्रकार अन्तर में भाव निर्ग्रन्थता अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञानपूर्वक वीतरागभाव प्रकटे और बाह्य में वस्त्रादिरहित निर्ग्रन्थता न हो – ऐसा कभी नहीं हो सकता। जैसे बादाम का ऊपर का छिलका निकल जाए और अन्दर का छिलका न निकला हो – ऐसा तो हो सकता है, परन्तु का अन्दर का छिलका निकल जाए और ऊपर का छिलका न निकले – ऐसा कभी नहीं हो सकता। बाह्य वस्त्रादि परिग्रह ऊपर के छिलके के समान हैं और राग-द्वेष अन्दर के छिलके के समान हैं।

— पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी